International Journal of Applied Research 2019; 5(7): 501-503

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(7): 501-503
www.allresearchjournal.com
Received: 23-05-2019
Accepted: 21-06-2019

नीतु कुमारी
शोध–प्रज्ञा, हिन्दी विभाग, ल.ना. मि.विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
नीतु कुमारी
शोध–प्रज्ञा, हिन्दी विभाग, ल.ना. मि.विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

मैथिली साहित्य में आलोचना साहित्य एवं अर्थान्तर

नीतु कुमारी

सारांशः
कीर्तिनारायण मिश्र रचनात्मकता के मूल से परिचित होकर आलोचना के क्षेत्र में कदम रखते हैं। इसी कारण रचनाधर्मिता के संदर्भ में उनका विचार स्वानुभूतिपूर्ण यथार्थ से संपृक्त और सर्वनिष्ठ है। उनकी आलोचनात्मक दृष्टि अत्यन्त निर्भिक है। वे हिन्दी तथा मैथिली की साहित्यिक पृष्ठभूमि से परिचित है। इसी कारण इनकी आलोचनात्मक सोच सर्वमान्य एवं ग्राह्य है। अपनी एक मात्र आलोचनात्मक ग्रंथ 'अर्थान्तर' को लेकर मैथिली आलोचना साहित्य में अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज कराने वाले कीर्तिनारायण मिश्र एक सकल रचनाकार के रूप में जाने जाते हैं। मूल रूप से कवि रहे कीर्तिनारायण मिश्र ने 'अर्थान्तर' लिखकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा को उजाकर किया है।

प्रस्तावना
जीवन और उससे प्राप्त अनुभवों के जिन तत्त्वों को लेकर साहित्यकार अपनी कृर्ति को रचता है, आलोचना उन तत्वों को विश्लेषण करता है। किसी साहित्यिक रचना का परीक्षण कर उसके रूप, गुण, दोष आदि का निर्धारण करना ही आलोचना का कार्य है। एक ऐसी साहित्यिक विद्या जो किसी विषय के लक्ष्य को मद्देनजर रखते हुए, उसके गुण, दोष एवं उसकी गुणवत्ता को ध्यान में रखकर उसकी विवेचना करे आलोचना या समालोचना कहलाती है। इसमें बुद्धि तत्त्व की प्रधानता है जो कि आलोचना की कसौटी मानी जाती है। खासकर आलोचना की आलोचना करना एक जटिल कार्य है। आलोचना की दृष्टिकोण को दर्शाते हुए 'गणपतिचन्द्र' गुप्त जी लिखते हैं– ''साहित्य में किसी भी साहित्यिक रचना के विवेचन, विश्लेषण गुण–दोष दिग्दर्शन या मूल्यांकन को अथवा साहित्य के संबंध में किसी सामान्य विचार, सिद्धान्त या नियम के प्रतिपादन को तथा उसकी ऐतिहासिक, सामाजिक या मनोवैज्ञानिक व्याख्या को आलोचना, समालोचना या समीक्षा के अन्तर्गत स्थान दिया जाता है।''(1)
यह सर्वविदित है कि आलोचना और कविता दोनों का अपना गहरा अर्न्तसंबंध है, तथापि दोनों में सफलता अर्जित करना सबके लिए संभव नहीं हो पाता है। अच्छे कवि अच्छे आलोचक नही बन पाते हैं, तथा अच्छे आलोचक श्रेष्ठ कविता का सृजन नहीं कर पाते हैं, क्योंकि कविता का कारयित्री प्रतिभा से हैं, पर आलोचना में भावयित्री प्रतिभा की अनिवार्यता होती है। तथापित कई साहित्यकार अपवाद ही सही पर इन गुणों के साथ स्वयं को स्थापित करते हैं।
कीर्तिनारायण मिश्र अपने स्वभाव से मूलतः कवि है। परम्परा से पृथक् उनका अपना व्यक्तित्व है अपनी अस्मिता एवं पहचान है। उनकी काव्य यात्रा सीमान्त से आरंभ होती है और 'ध्वस्त होईत शांति स्तूप' पर कात्योत्कर्ष तक यात्रा करते हुए अद्यतन जारी है। 'ध्वस्त होईत शांति स्तूप' के लिए इन्हें 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' प्रदान किया गया। वे मूलतः विद्रोही तथा अकविता के अग्रणी कवि हैं। नष्ट–ध्वस्त होती हुई भारत और मिथिलांचल की गौरवमयी परम्परा में व्याप्त दर्द से आहत हैं। उनकी कविता में दर्द सर्वत्र व्याप्त है। साथ ही आलोचनात्मक कृति भी उनकी कविता की अनुगामिनी है। निरपेक्ष, निर्भीक और आक्रामक। आलोचना में आकार मिश्र जी का विस्तृत अध्ययन प्रतिफलित हो सका है। उन्होंने सम्पूर्ण मैथिली साहित्य को अपने भीतर आत्मसात कर लिया है। इन्हें हिन्दी, संस्कृत, बंगला तथा अंग्रेजी–साहित्य का उन्हें व्यापक ज्ञान है। इसलिए इनकी समीक्षा दृष्टि भी अत्यन्त श्रेष्ठ परिलक्षित होती है।
'अर्थान्तर' कीर्तिनारायण मिश्र रचित एकमात्र आलोचनात्मक ग्रंथ है, जिसका प्रकाशन सितम्बर 2004 में हुआ। इसकी भाषा मैथिली हैं। यह ग्रन्थ मूल रूप से चार खण्डों में विभाजित है, जिसका आरंभ ही आलोचना खण्ड से हुआ है। इस खंड में कुल बारह निबंधों के अन्तर्गत कविता, अकविता, उपन्यास के साथ–साथ मैथिली–साहित्य के भूमण्डलीकरण पर गंभीर चर्चा की गई है। इसमें व्यक्तिनिष्ठ समीक्षा का भी समावेश किया गया है, जिसमें किरण, नागार्जुन, राजकमल चौधरी, मायानंद मिश्र तथा सोमदेव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की समीक्षा की गई है। इस ग्रन्थ के एक खण्ड में मैथिली की अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाओं की समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

ग्रंथ के अगले खण्ड का संबंध मैथिली आन्दोलन से है, जिसमें नवयुवकों के आक्रोश, नैतिकता के अंधत्व तथा भाषा की राजनीति पर चर्चा की गई है। इसी खण्ड में बेगूसराय जिले में बोली जानेवाली मैथिली तथा उसके भाषिक स्वरूप एवं इस जिले के मैथिली–आन्दोलन में सक्रियता का उल्लेख किया गया है।

कीर्तिनारायण मिश्र की रचनाधर्मिता वस्तुतः उनकी जीवन–धारा है। कविता हो या आलोचना, वे निरंतर उसी धारा में प्रवाहित होते रहते हैं। उनका मानना है कि –'अपटी खेत में बही रहल छथि, बरद जकाँ। श्रेष्ठ साहित्यकारक लेल साहित्यक खेत सर्वदा अपटीए रहैत छै। जोतल खेत में जोतनाइ सहज होत अछि, किन्तु ओ श्रेष्ठ नहि भऽ सकैत अछि।''[2] उनकी दृष्टि में मैथिली आलोचना अपटी (बिन जोते हुए) खेत के समान है। उनका विचार है कि ''विगत 30–35 वर्ष की अपनी विकास–यात्रा में मैथिली समालोचना ने मात्र प्रतिष्ठा ही अर्जित नहीं की हैं, वरन् जवानी के उस शिखर पर पहुँच गई है, जहाँ से सम्पूर्ण साहित्यिक विद्या का लेखन तथा गतिविधियाँ अपनी समीक्षा दृष्टि से देखा जा सकता है। फिर भी वे मानते हैं कि इसमें अभी गंभीर अध्ययन–अनुशीलन से प्राप्त रचनात्मक विवेक उत्पन्न नहीं हो सका है। अभी तक उनमें कवि का आत्मसंघर्ष, जीवनानुभव को सृजनात्मक वैशिष्ट्य तथा शिल्पगत प्रयोग से तादात्म्य स्थापित करने की क्षमता का विकास नहीं हो सका है।''[3]

इस कथन से कवि–आलोचक कीर्तिनारायण मिश्र के आलोचनात्मक विचार पर बखूबी प्रकाश पड़ता है।

मिश्र जी की आलोचनात्मक सफलता का सबसे बड़ा कारण है कि वे रचना के मूल से भलीभाँति परिचित हैं। एक कवि होने के कारण कविता की रचना–धर्मिता से उनका गहरा जुड़ाव है, जिसका उपयोग वे अपनी समीक्षात्मक दृष्टिकोण की व्यंजना में करते हैं। मिश्र जी अपने समय के आलोचनात्मक संघर्ष को भी उद्घाटित करते हैं, जो संघर्ष वर्तमान समय में पुरानी पीढ़ी एवं नई पीढ़ी के मध्य चल रहा था। इस संघर्ष का मूल कारण रहा है कि पुरानी पीढ़ी के आलोचक लेखक, कवि जहाँ परम्परा से अपने को जोड़े रखना चाह रहे थे, वहीं दूसरी ओर नई पीढ़ी के लोग अतीत की तमाम मान्यताओं परम्पराओं को यथार्थ के चश्मे से देख रहे थे। मिश्र जी की विशेषता है कि वे दोनों के बीच समन्वय स्थापित करने की पुरजोर कोशिश करते हैं। दोनों पीढ़ी की मानसिकता से होकर सर्वथा आलोचना की धारा बीच से निकालना चाह रहे हैं। ''मिश्र जी एक सहृदय कवि हैं, इस कारण वे कविता के प्रति अत्यन्त सकारात्मक तथा प्रगतिशील सोच रखते हैं। उनका मानना है कि कविता कवि की आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति होती है।''[4]

रचनाधर्मिता के संदर्भ में उनका विचार स्वानुभूति के यथार्थ से संपृक्त सर्वनिष्ठ अनुभूति है। वे कहते हैं कि 'कवि कर्म 'गोताखोरी' थिकैक सामान्य लोक टाट पर ठाढ़ भऽ नदीमे प्रविष्ट होइत अछि, तकर बाद अकल्पित अनुभवक साक्षात्कार होइते ओ गहराईमे डूबल चल जाइत अछि, नापब बिसरि जाइते अछि। ई दुनू प्रक्रिया प्रत्येक क्षेत्रमे घटित होइत छैक। काव्य साधना सेहो साधना थिकैक।[5] नवीनता को स्वीकार करने वाले कीर्तिनारायण मिश्र नयी पीढ़ी के कवियों एवं उनकी रचनाओं से भली–भाँति परिचित हैं। हरे कृष्ण झा रचित 'हमरा लेल धनसन' की समीक्षा करते हुए वे लिखते हैं कि– ''एहि रचनामे कवि दुर्दशाग्रस्त ग्राम्य जीवन आ मनुक्खक हताशा केर जीवंत चित्र उपस्थित कयलनि अछि।''[6]

समकालीन रचनाधर्मिता के संदर्भ में श्री मिश्रजी का विचार बहुत ही स्पष्ट है उनके विचार से आधुनिक कवि न मनीषी हैं और न स्वयंभू और न ही आधुनिक कविता मात्र प्रेरणा से उद्भूत है, उसका उत्स है–आत्मसंघर्ष इसलिए कविता के समक्ष निरापद मार्ग से चलते हुए समाज में अपने को विशिष्ट मान लेना आत्म प्रवंचना को छोड़कर कुछ नहीं है।

'अर्थान्तर' के गहन अध्ययन से यह परिलक्षित होता है कि कीर्तिनारायण मिश्र की आलोचनात्मक दृष्टि अत्यन्त निर्भीक है। वे मैथिली साहित्य की पृष्ठभूमि से बखूबी परिचित हैं। हिन्दी एवं मैथिली के ख्यात कवि नागार्जुन की समीक्षा करते हुए कहते हैं– ''संस्कार पूर्वाग्रहे छल जे हिन्दीक नागार्जुनके प्रगतिशील आन्दोलन सँ सम्बद्ध एक महान जनकवि होइतो मैथिलीक यात्री प्रगतिवादी–मार्क्सवादी कम्बल ओढ़ने एकटा कर्मकांडी पंडित बुझना जाइछ, जकर आँचलिक संकीर्णता भारतीयतामे परिणत भऽ गेलैक मुदा ओ कोनो क्रान्तिक जन्म नहीं दऽ सकल।[7] वहीं उन्होंने नागार्जुन की कई रचनाओं को विशिष्ट भी माना है। जिसे उन्होंने हिन्दी एवं मैथिली की अनुपम निधि कहा है।

मिश्र जी मानते हैं कि 1958 ई0 में राजकमल चौधरी के 'स्वरगंधा' के प्रकाशन से मैथिली की कविता में एक मोड़ आया। 'स्वरगंधा' के विश्लेषण के क्रम में वे लिखते हैं– ''संस्कार युक्त, अनुभव सम्पन्न राजकमल स्वरगंधा केर अनेक कविता में समाजोन्मुख यथार्थवाद आन्तरिक यौन संघर्ष, बाहरी वर्ग–संघर्ष एवं व्यक्ति विद्रोहक 'अहं' वस्तुगत चेतना एवं विज्ञान सम्मत आधुनिकता केर लक्षण प्रकट भेल। कविताक विकासयात्रा केर 'स्वरगंधा' प्रारंभ छैल।''[8] इस तरह हम पाते हैं कि कीर्तिनारायण मिश्र को मात्र अपनी ही रचना–प्रक्रिया का बोध नहीं है, वरन् वे दूसरे की रचना में भी उसी प्रकार प्रवेश कर विश्लेषण और मूल्यांकन करने में समर्थ हैं। वे स्वीकार करते हैं कि आधुनिक मैथिली साहित्य को समृद्ध करने में डॉ. कांचीनाथ झा 'किरण', बैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' तथा राजकमल चौधरी आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने मैथिली साहित्य की तमाम विद्याओं को समृद्ध करने में अपनी प्रतिभा का उपयोग किया है।

निष्कर्षः

बहुमुखी प्रतिभा के धनी कीर्तिनारायण मिश्र का व्यग्र व्यक्तित्व मिथिलांचल के व्यथा–कथा का प्रतीत है। इसलिए उनकी आलोचनात्मक दृष्टि के विश्लेषण के संदर्भ में इतना ही कहा जा सकता है कि यहाँ उनका बहुआयामी व्यक्तित्व प्रदर्शित होता है। हालांकि मिश्रजी व्यक्तित्व मात्र का एक पक्ष ही उद्घाटित कर पाते हैं, फिर भी मैथिली आलोचना–साहित्य में इनकी महत्ता कमतर नहीं है। मैथिली आलोचना इनकी आलोचनात्मक दृष्टि से समृद्ध होती रही है। मिश्रजी की आलोचना उनकी कविताई की अनुगामिनी है। निरपेक्ष, निर्भीक और आक्रामक है। आलोचना में दर्शन के साथ–साथ गहन अध्ययन की भी आवश्यकता होती है। कीर्तिनारायण मिश्र जी का अध्ययन क्षेत्र विस्तृत और गंभीर है। सम्पूर्ण मैथिली साहित्य को आत्मसात करने के साथ–साथ हिन्दी, बंगला तथा अंग्रेजी साहित्य का भी इन्हें गंभीर तथा विस्तृत ज्ञान है, जिनसे उनकी आलोचना–दृष्टि सम्पन्न होती है। कीर्तिनारायण मिश्र मुख्यतः कवि है, अपने स्वभाव से, प्रवृत्ति से, ज्ञान से, अनुभूति एवं संवेदना से, फिर भी उनकी समीक्षा–दृष्टि कहीं से भी कमजोर या पूर्वतियों का अनुकरण नहीं है। यह अलग बात है कि मिश्र जी की समीक्षा–दृष्टि के केन्द्र में अधिकतर उनकी रचना–दृष्टि ही रही है। इनकी एकमात्र आलोचनात्मक ग्रंथ 'अर्थान्तर' है जिसकी भाषा ही नहीं परिवेश और 'संस्कार भी मैथिली है।

संदर्भ सूची :

1. गणपतिचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–2015, 14 वाँ संस्करण, पृ. –474
2. कीर्ति नारायण मिश्र, अर्थान्तर (मैथिली आलोचना) किसुन संकल्प लोक, सुपौल–2004 ई. (भूमिका से)
3. कीर्ति नारायण मिश्र, अर्थान्तर (मैथिली आलोचना) किसुन संकल्प लोक, सुपौल–2004 ई. (भूमिका से)

4. कीर्ति नारायण मिश्र, अर्थान्तर (मैथिली आलोचना) किसुन संकल्प लोक, सुपौल–2004 ई., पृ.–48
5. कीर्ति नारायण मिश्र, अर्थान्तर (मैथिली आलोचना) किसुन संकल्प लोक, सुपौल–2004 ई., पृ.–65
6. कीर्ति नारायण मिश्र, अर्थान्तर (मैथिली आलोचना) किसुन संकल्प लोक, सुपौल–2004 ई., पृ.–33
7. कीर्ति नारायण मिश्र, अर्थान्तर (मैथिली आलोचना) किसुन संकल्प लोक, सुपौल–2004 ई., पृ.–58